महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 6 श्लोक 19-34 दैवकी अपेक्षा पुरूषार्थ श्रेष्ठता का वर्णन

पूर्वकाल में राजा ययाति पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्यूत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे, परंतु उनके पुण्यकर्मा दौहित्रों ने उन्हें पुन: स्वर्गलोक में पहुंचा दिया। इसी तरह पूर्वाकाल में ऐल नाम से विख्यात राजर्षि पुरूवा ब्राह्मणों के आशीर्वाद देने पर स्वर्गलोक को प्राप्त हुए थे। (अब इसके विपरीत दृष्टांत देते है) अश्वमेध आदि यज्ञों द्वारा सम्मानित होने पर भी कौशल नरेश सौदास को महर्षि वसिष्ठ के शाप से नरभक्षी राक्षस होना पड़ा। इसी प्रकार अश्वत्थामा और परशुराम– ये दोनों ही ऋषि पुत्र ओर धनुर्धर वीर हैं । इन दोनों ने पुण्यकर्म भी किये हैं तथापि उस कर्म के प्रभाव से स्वर्ग में नहीं गये। द्वितीय इन्द्र के समान सौ यज्ञों का अनुष्ठान करके भी राजा वसु एक ही मिथ्या भाषण के दोष से रसातल को चले गये।

विरोचन कुमार बलिकों देवताओं ने धर्मपाश से बांध लिया और भगवान विष्णु के पुरूषार्थ से वे पातालवासी बना दिये गये। राज जनमेजय द्विज स्त्रियों का वध करके इन्द्र के चरण का आश्रय ले जब स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए, उस समय दैव ने उसे आकर क्यों नहीं रोका। ब्रह्मर्षि वैशम्पायन अज्ञानवश ब्रह्माण की हत्या करके बाल-वध के पाप से भी लिप्त हो गये थे तो भी दैव ने उन्हें स्वर्ग जाने से क्यों नहीं रोका। पूर्वकाल में राजर्षि नृग बड़े दानी थे । एक बार किसी महायज्ञ में ब्राह्मणों को गोदान करते समय उनसे भूल हो गयी, अर्थात एक गउ को दुबारा दान में दे दिया जिसके कारण उन्हें गिरगिट की योनि में जाना पड़ा। राजर्षि धुन्धमार यज्ञ करते-करते बूढ़े हो गये तथापि देवताओं के प्रसन्नतापूर्वक दिये हुए वरदान को त्यागकर गिरिव्रज में सो गये (यज्ञ का फल नहीं पा सके)। महाबली धृतराष्ट्र–पुत्रों ने पाण्डवों का राज्य हड़प लिया था । उसे पाण्डवों ने पुन: बाहुबल से ही वापस लिया ।

---

1. राजा ययाति का स्वर्ग से पतन और दौहित्रों (नातियों) द्वारा उद्धार [1]

यह कथा **महाभारत के आदिपर्व (संभव पर्व - अध्याय 85 से 93)** तथा **उद्योगपर्व (अध्याय 120 से 123)** में विस्तार से वर्णित है। [1]

पूरी कथा:

- **अहंकार और पतन:** चंद्रवंशी राजा ययाति अपने महान पुण्यों, यज्ञों और कठिन तपस्या के बल पर सशरीर स्वर्गलोक पहुंचे थे। वहाँ एक दिन देवराज इंद्र ने उनसे पूछा, "हे राजन्! जब आप पृथ्वी पर तपस्या कर रहे थे, तब आपके समान तपस्वी कौन था?" अहंकार के वश में आकर ययाति ने उत्तर दिया, "हे इंद्र! देवताओं, मनुष्यों, गंधर्वों या महर्षियों में कोई भी तप में मेरे समान नहीं है।" अपने पुण्य का स्वयं बखान करने और दूसरों को अपने से छोटा समझने के कारण उनका पुण्य तत्काल क्षीण हो गया। इंद्र ने कहा कि तुम्हारी स्थिति अब समाप्त हो गई है और उन्हें स्वर्ग से नीचे गिरा दिया गया।
- **company of the virtuous (संतों का संग):** स्वर्ग से गिरते समय ययाति ने इंद्र से प्रार्थना की कि यदि मेरा पतन निश्चित ही है, तो मुझे पृथ्वी पर सत्पुरुषों (पुण्यात्माओं) के बीच गिराया जाए। इंद्र ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।
- **दौहित्रों से मिलन:** राजा ययाति अंतरिक्ष से नीचे गिरते हुए नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचे, जहाँ उनके चार प्रतापी दौहित्र (पुत्री माधवी के पुत्र)—**अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान और शिबि**—एक विशाल यज्ञ कर रहे थे। आकाश से दिव्य पुरुष को गिरते देख उन्होंने ययाति को रोका और उनका परिचय पूछा। ययाति ने अपने अहंकार और स्वर्ग से पतन की पूरी गाथा सुनाई।

- **पुण्यों का दान और पुनः स्वर्ग गमन:** अपने नाना की दशा देखकर चारों पुण्यकर्मा दौहित्रों ने सहर्ष अपने-अपने जीवनभर के यज्ञों और पुण्यों का फल ययाति को दान कर दिया। उसी समय उनकी पुत्री माधवी भी वहाँ प्रकट हुई। अपनों के इस निस्वार्थ पुण्य-दान और त्याग से ययाति का अहंकार पूरी तरह नष्ट हो गया और वे पुनः पवित्र हो गए। तभी आकाश से पाँच दिव्य स्वर्ण रथ आए और ययाति अपने दौहित्रों के साथ पुनः आदरपूर्वक स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गए। [1, 2, 3, 4, 5]

---

2. राजर्षि पुरूरवा (ऐल) का ब्राह्मणों के आशीर्वाद से स्वर्ग प्राप्त करना

यह विशिष्ट संदर्भ **महाभारत के अनुशासन पर्व (अध्याय 6, श्लोक 31-34)** में मिलता है, जहाँ भीष्म पितामह युधिष्ठिर को ब्राह्मणों की महिमा और उनके आशीर्वाद की शक्ति समझा रहे हैं। (इसके अलावा पुरूरवा-उर्वशी की मुख्य कथा *ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण और विष्णु पुराण* में भी है)। [1, 2, 3, 4]

पूरी कथा:

- **ऐल का परिचय:** राजा पुरूरवा, राजा इल (जो बाद में माता इला बनीं) और चंद्रदेव के पुत्र बुध के संताने थे, इसलिए इन्हें 'ऐल' (इला का पुत्र) कहा जाता है। वे चंद्रवंश के आदिपुरुष और अत्यंत पराक्रमी तथा कांतिमान राजा थे।
- **ऐश्वर्य का नष्ट होना:** पुरूरवा का स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी से अगाध प्रेम था। एक समय ऐश्वर्य और काम के मद में चूर होकर पुरूरवा का मानसिक संतुलन डगमगा गया। उन्होंने ब्राह्मणों के धन (सामग्री/भूमि) का हरण कर लिया। इस पर महर्षि सनत्कुमार और अन्य ब्राह्मणों ने उन्हें समझाने का प्रयास किया, लेकिन अहंकारवश पुरूरवा ने उनकी बात नहीं मानी। क्रोधित होकर ब्राह्मणों ने उन्हें शाप दे दिया, जिसके कारण उनका सारा तेज, ऐश्वर्य और लक्ष्मी नष्ट हो गई।
- **प्रायश्चित और आशीर्वाद:** अपनी भूल का आभास होने पर राजा पुरूरवा को गहरा वैराग्य हुआ। उन्होंने ब्राह्मणों से क्षमा मांगी, उनका धन लौटाया और उनकी शरण में चले गए। पुरूरवा ने ब्राह्मणों की कठोर सेवा की और उन्हें प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किए।
- **स्वर्गलोक की प्राप्ति:** राजा के सच्चे पश्चाताप और सेवा भाव को देखकर ब्राह्मणों का क्रोध शांत हो गया। उन्होंने पुरूरवा को हृदय से आशीर्वाद दिया। ब्राह्मणों के इसी परम आशीर्वाद और दिव्य मंत्र शक्ति के प्रभाव से पुरूरवा ने अरणी (यज्ञ की लकड़ी) से तीन प्रकार की दिव्य अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) को प्रकट किया और पृथ्वी पर यज्ञ कला की स्थापना की। ब्राह्मणों के आशीर्वाद की शक्ति के बल पर ही उनके सारे पाप धुल गए और वे मृत्यु के पश्चात परम आनंदमयी अक्षय स्वर्गलोक को प्राप्त हुए। [1, 2, 3, 4, 5, 6, 7]

निष्कर्ष (सार):

महाभारत में ये दोनों उदाहरण यह सिखाने के लिए दिए गए हैं कि:

1. **ययाति की कथा:** यह दर्शाती है कि मनुष्य चाहे कितना भी बड़ा पुण्य आत्मा क्यों न हो, **अहंकार** उसका पतन करा देता है। लेकिन सत्संग, अपनों के त्याग और विनम्रता से खोया हुआ स्थान पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

2. **पुरूरवा की कथा:** यह सिद्ध करती है कि **सच्चा पश्चाताप** बड़े से बड़े पाप को भी नष्ट कर देता है और संतों व ब्राह्मणों का आशीर्वाद असम्भव को भी सम्भव बना देता है। [1, 2, 3, 4]

---

3. कौशल नरेश सौदास का नरभक्षी राक्षस होना [1]

यह कथा महाभारत के आदिपर्व (अध्याय 175-176) तथा *वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड* में मिलती है। इन्हें राजा **कल्माषपाद** या मित्रसह के नाम से भी जाना जाता है। [1, 2]

पूरी कथा:

- **मार्ग का विवाद:** राजा सौदास (कल्माषपाद) इक्ष्वाकु वंश के अत्यंत प्रतापी और कई अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजा थे। एक दिन वे वन में शिकार खेल रहे थे। संकरे मार्ग पर सामने से महर्षि वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र **शक्ति मुनि** आ रहे थे। राजा ने अहंकारवश मुनि को हटने के लिए कहा और मुनि ने कहा कि शास्त्रानुसार राजा को ब्राह्मण के लिए मार्ग छोड़ना चाहिए। विवाद बढ़ने पर क्रोध में आकर राजा ने शक्ति मुनि पर कोड़ा चला दिया।
- **राक्षस होने का शाप:** राजा के इस अशिष्ट व्यवहार से कुपित होकर शक्ति मुनि ने उन्हें शाप दे दिया: *"तूने राक्षस की भांति व्यवहार किया है, इसलिए तू इसी क्षण से नरभक्षी राक्षस हो जा"*। इसी दौरान विश्वामित्र (जो वसिष्ठ जी के प्रतिद्वंद्वी थे) ने 'किंकर' नाम के एक भयानक राक्षस को सौदास के शरीर में प्रविष्ट करा दिया।
- **पुत्रों का भक्षण:** राक्षस बनते ही राजा सौदास की मति मारी गई। उन्होंने सबसे पहले शाप देने वाले शक्ति मुनि को ही मार कर खा लिया। इसके बाद उन्होंने वसिष्ठ जी के शेष सभी 99 पुत्रों को भी एक-एक करके खा लिया।
- **शापमुक्ति:** बाद में जब महर्षि वसिष्ठ ने अपने तपोबल से राजा को इस राक्षस योनि और विश्वामित्र के प्रभाव से मुक्त किया, तब राजा पुनः अपने वास्तविक स्वरूप में आए और उन्होंने वसिष्ठ जी से ही अपने वंश को आगे बढ़ाने की प्रार्थना की। [1, 2, 3, 4, 5]

---

4. अश्वत्थामा और परशुराम का स्वर्ग न जाना

कथा का स्रोत (Source):

अश्वत्थामा की कथा **महाभारत के सौप्तिक पर्व और स्त्री पर्व** में आती है, जबकि परशुराम जी की कथा **महाभारत के वनपर्व और श्रीमद्भागवत पुराण** में वर्णित है। [1]

पूरी कथा (अश्वत्थामा):

- अश्वत्थामा गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र और भगवान शिव के अंशावतार थे। महाभारत युद्ध के अंत में अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए उन्होंने घोर पाप किए। उन्होंने रात के अंधेरे में सोते हुए पाण्डु-पुत्रों (द्रौपदी के पाँचों बेटों) का वध किया और उत्तरा के गर्भ में पल रहे बालक (परीक्षित) पर **ब्रह्मास्त्र** चला दिया।

- इस अत्यंत क्रूर और पाप कर्म के कारण भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें शाप दिया कि वे तीन हजार वर्षों तक कोढ़ से पीड़ित होकर निर्जन स्थानों पर भटकेंगे। उनके मस्तक की दिव्य मणि भी निकाल ली गई। इस प्रकार महान धनुर्धर और चिरंजीवी होने पर भी वे अपने कर्मों के कारण सशरीर स्वर्ग सुख से वंचित रह गए। [1, 2, 3]

पूरी कथा (परशुराम):

- भगवान परशुराम महर्षि जमदग्नि के पुत्र हैं। उन्होंने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन किया था। यद्यपि उन्होंने पृथ्वी को जीतकर कश्यप ऋषि को दान कर दिया और महेंद्र पर्वत पर कठिन तपस्या (पुण्यकर्म) की, परंतु उन्हें मृत्युलोक छोड़कर देवराज इंद्र के अमरावती जैसे 'स्वर्गलोक' में वास नहीं मिला।
- **चिरंजीवी का विधान:** सनातन धर्म की मान्यता के अनुसार, परशुराम और अश्वत्थामा दोनों **सप्त-चिरंजीवियों** (अमर पुरुषों) में गिने जाते हैं। वे आज भी इसी पृथ्वी पर सशरीर निवास कर रहे हैं। वे सामान्य मनुष्यों की भांति मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक नहीं गए, क्योंकि उन्हें कल्प के अंत तक इसी पृथ्वी पर रहकर धर्म की रक्षा या अपने प्रारब्ध को भोगने का आदेश मिला है।

---

5. राजा उपरिचर वसु का एक असत्य से रसातल (पाताल) जाना

यह कथा **महाभारत के शांतिपर्व (मोक्षधर्म पर्व - अध्याय 337)** में विस्तार से दी गई है। [1, 2, 3]

पूरी कथा:

- **देवताओं और ऋषियों का विवाद:** चेदिराज उपरिचर वसु देवराज इंद्र के परम मित्र थे और उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे。 एक बार ऋषियों और देवताओं के बीच यज्ञ की विधि को लेकर भारी विवाद छिड़ गया। ऋषियों का मत था कि यज्ञ 'अज' (यानी धान या अन्न के बीजों) से होना चाहिए, क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है। इसके विपरीत, देवताओं का कहना था कि 'अज' का अर्थ बकरा होता है, इसलिए बकरे की बलि दी जानी चाहिए।
- **राजा वसु की मध्यस्थता:** दोनों पक्षों ने इस संशय को दूर करने के लिए आकाश मार्ग में विचरने वाले परम ज्ञानी राजा वसु को अपना पंच चुना। राजा वसु जानते थे कि ऋषियों की बात सही है और सनातन धर्म में अहिंसा ही श्रेष्ठ है।
- **मिथ्या भाषण और पतन:** लेकिन देवताओं का पक्ष रखने और उनका प्रिय बनने के लोभ में राजा वसु ने असत्य (मिथ्या) का सहारा लिया。 उन्होंने कहा—"यज्ञ में पशुओं की बलि देना ही शास्त्रों के अनुकूल है।" राजा के इस पक्षपातपूर्ण असत्य वचन को सुनते ही ऋषियों ने अत्यंत क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया। शाप के प्रभाव से जो राजा हमेशा आकाश मार्ग में दिव्य रथ पर चलते थे, वे उसी क्षण विमान से गिरकर **रसातल (पृथ्वी के नीचे के लोक/पाताल)** में धंस गए। [1, 2, 3]

निष्कर्ष (सार):

महाभारत के ये प्रसंग यह गंभीर सीख देते हैं कि:

1. **सौदास की कथा:** यह सिखाती है कि व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा यज्ञकर्ता हो, साधु-संतों का अपमान करने से उसका सर्वनाश निश्चित है।

2. **अश्वत्थामा और परशुराम की कथा:** यह स्पष्ट करती है कि शक्ति और प्रतिभा होने के बावजूद मर्यादा से बाहर जाकर किए गए कर्म मनुष्य को दिव्य गतियों से वंचित कर देते हैं।
3. **राजा वसु की कथा:** यह बताती है कि सत्य का स्थान सबसे ऊपर है। सौ यज्ञों का पुण्य भी एक 'सत्य' की बलि चढ़ाने पर मनुष्य को पतन से नहीं बचा सकता। [1, 2]

6. विरोचन कुमार बलि को धर्मपाश से बांधना और पाताल भेजना

शास्त्र संदर्भ (Scriptural Reference):

- **मुख्य सन्दर्भ:** महाभारत, अनुशासन पर्व (दानधर्म पर्व), अध्याय 6।
- **विस्तृत कथा सन्दर्भ:** *श्रीमद्भागवत महापुराण, अष्टम स्कंध (अध्याय 15 से 23)*। [1, 2, 3]

विस्तृत कथा और दार्शनिक रहस्य:

असुरराज महाबली (विरोचन के पुत्र) अत्यंत पराक्रमी और दानवीर शासक थे। उन्होंने अपने बाहुबल (पुरुषार्थ) के दम पर त्रिलोकी (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) को जीत लिया और देवराज इंद्र को उनके सिंहासन से च्युत कर दिया। [1]

चूंकि बलि अधर्मी नहीं थे और धर्मपूर्वक शासन कर रहे थे, इसलिए उन्हें युद्ध में सीधे परास्त करना असंभव था। देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिए भगवान विष्णु ने **वामन अवतार** (बौने ब्राह्मण का रूप) धारण किया। वे राजा बलि के अश्वमेध यज्ञ में पहुँचे और उनसे केवल तीन पग भूमि दान में मांगी। असुरगुरु शुक्राचार्य भगवान की माया को भांप गए और उन्होंने बलि को दान देने से मना किया। परंतु, बलि ने अपनी सत्यनिष्ठा और दान के संकल्प (पुरुषार्थ) को सर्वोपरि माना और दान का संकल्प ले लिया। [1]

संकल्प लेते ही वामन जी ने अपना विराट (त्रिविक्रम) रूप धारण किया। उन्होंने पहले पग में पूरी पृथ्वी (भूलोक) और दूसरे पग में स्वर्गलोक को नाप लिया। अब तीसरे पग के लिए कोई स्थान नहीं बचा। तब भगवान विष्णु ने राजा बलि को **'धर्मपाश' (सत्य के बंधन या वरुण पाश)** से बांध दिया। [1]

भगवान ने कहा, "राजन्! तुमने तीन पग भूमि देने का वचन दिया था, परंतु दो ही पग में तुम्हारा सर्वस्व समाप्त हो गया। अब तीसरा पग कहाँ रखूँ? यदि वचन पूरा नहीं किया, तो असत्य के दोष से नरक जाओगे।" इस पर राजा बलि तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने 'सत्यव्रत रूपी पुरुषार्थ' का परिचय देते हुए अपना मस्तक आगे कर दिया और कहा, "प्रभो! तीसरा पग मेरे मस्तक पर रख दीजिए।" भगवान ने उनके मस्तक पर पैर रखकर उन्हें सुतल लोक (पाताल) भेज दिया और उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं उनके द्वारपाल बन गए। [1, 2, 3, 4, 5]

भीष्म पितामह का तर्क:

भीष्म यहाँ समझाते हैं कि बलि को पाताल भेजने वाला कोई अदृश्य दैव (भाग्य) नहीं था। देवताओं ने साक्षात् भगवान विष्णु की नीति, वामन रूपी अवतार और **पुरुषार्थ** के बल पर ही बलि को बांधा था। यदि देवता हाथ पर हाथ धरे भाग्य के भरोसे बैठे रहते, तो बलि कभी परास्त नहीं होते। [1, 2]

---

7. राजा जनमेजय का द्विज (ब्राह्मण) स्त्रियों के वध के बाद स्वर्ग जाना

शास्त्र संदर्भ (Scriptural Reference):

- **मुख्य सन्दर्भ: महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 6, श्लोक 31-33।**

- **पूरक सन्दर्भ:** *महाभारत, शांतिपर्व (अध्याय 150-152 - इंद्रोता-शौनक संवाद)* तथा *हरिवंश पुराण (भविष्य पर्व)*। [1, 2]

विस्तृत कथा और दार्शनिक रहस्य:

कथा का प्रारंभ: जनमेजय का अंतिम विशाल यज्ञ

अपने जीवन में 'सर्पसत्र यज्ञ' करने के बहुत समय बाद, राजा जनमेजय ने अपने कुल के पापों की मुक्ति और चक्रवर्ती साम्राज्य की पूर्णता के लिए एक अत्यंत विशाल और दुर्लभ यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में देश-विदेश से महान विद्वान, ऋषि-मुनि और प्रकांड ब्राह्मण बुलाए गए थे।

यज्ञ की वेदी तैयार थी और हज़ारों द्विज (ब्राह्मण) अपनी पत्नियों के साथ वहाँ पधारे थे। प्राचीन काल में नियम था कि बड़े यज्ञों में ऋषि-ब्राह्मण अपनी पत्नियों (ब्राह्मणी) के साथ आते थे, ताकि यज्ञ शाला में पवित्र ऋचाओं और मंत्रों का सामूहिक गान हो सके। उस समय वहाँ उपस्थित कई ब्राह्मण स्त्रियां गर्भवती भी थीं।

विवाद का कारण: यज्ञशाला में 'अश्व' का कौतुक

इस महायज्ञ के दौरान एक विशेष अनुष्ठान के लिए एक परम पूज्य और दिव्य लक्षण वाले घोड़े (अश्व) को यज्ञशाला में लाया गया। वह घोड़ा अत्यंत सुंदर और चमत्कारी था।

यज्ञ के नियमों और कौतुक (मनोरंजन या जिज्ञासा) वश, वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों की पत्नियाँ उस दिव्य घोड़े को देखने के लिए आगे आईं। वे आपस में हँसते-मजाक करते हुए उस घोड़े की सुंदरता और उसके लक्षणों की चर्चा करने लगीं। स्त्रियाँ सहज स्वभाव के कारण आपस में कुछ परिहास (हंसी-मजाक) भी कर रही थीं।

तभी वहाँ एक ऋषि (कुछ ग्रंथों के अनुसार महर्षि व्यास के कुल के या कोई अन्य उग्र तपस्वी ऋषि) आए। उन्होंने देखा कि यज्ञ जैसी परम पवित्र जगह पर जहाँ अत्यंत गंभीर मंत्रोच्चार होना चाहिए, वहाँ ये स्त्रियाँ घोड़े को देखकर हँस रही हैं और विलासपूर्ण बातें कर रही हैं।

ऋषि का क्रोध और राजा का भ्रम

ऋषि ने इसे यज्ञ का अपमान समझा। उन्होंने क्रोध में आकर उन स्त्रियों को ज़ोर से डाँटा और कहा— *"तुम सब यज्ञशाला की मर्यादा भूलकर एक पशु के प्रति इस प्रकार सम्मोहित होकर हँस रही हो, जैसे कोई साधारण स्त्री करती है। तुम सब मर्यादाहीन हो चुकी हो।"*

जब राजा जनमेजय ने यह देखा, तो वे असमंजस में पड़ गए। राजा के भीतर पहले से ही थोड़ा राजमद (सत्ता का अहंकार) था। उन्होंने ब्राह्मणों की स्त्रियों द्वारा की गई इस हँसी को अपने कुल और अपने इस महान यज्ञ का व्यक्तिगत अपमान समझ लिया। राजा को लगा कि ये स्त्रियाँ उनके यज्ञ की पवित्रता को नष्ट कर रही हैं और जानबूझकर उपहास उड़ा रही हैं।

भयानक घटना: क्रोध का आवेग और वध

क्रोध और अहंकार के वशीभूत होकर राजा जनमेजय अपनी सुध-बुध खो बैठे। उन्होंने बिना सोचे-समझे अपने सैनिकों को आदेश दे दिया कि इन स्त्रियों को तुरंत यज्ञशाला से बाहर निकाला जाए और इन्हें दंडित किया जाए।

सैनिकों ने राजा के क्रोध के डर से अति कर दी। राजा के मंत्रियों और सैनिकों द्वारा उन ब्राह्मण स्त्रियों के साथ अत्यंत क्रूर व्यवहार किया गया। क्रोध की उस विवशता और अफरा-तफरी में, उन गर्भवती द्विज स्त्रियों पर लाठियों या शस्त्रों से प्रहार हुआ, जिससे उनके गर्भ गिर गए (भ्रूण हत्या हुई) और तड़पते हुए कई गर्भवती ब्राह्मण स्त्रियों की मृत्यु हो गई।

जैसे ही उन निर्दोष स्त्रियों के प्राण निकले, पूरी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया। यज्ञ का आनंद पल भर में चीख-पुकार और मातम में बदल गया।

[1, 2]

ऋषियों और मंत्रियों ने उनसे कहा कि अब तुम्हारा पतन निश्चित है और तुम्हें घोर नरक भुगतना होगा। परंतु जनमेजय भाग्य के भरोसे बैठकर रोए नहीं। उन्होंने अपने गुरु **महर्षि इंद्रोत शौनक** की शरण ली। शौनक जी ने उन्हें कठोर प्रायश्चित करने का मार्ग बताया। [1]

राजा जनमेजय ने राजपाठ का मोह छोड़कर अत्यंत कठिन तपस्या की, अश्वमेध यज्ञ किए और अपने अंतःकरण को शुद्ध किया। उन्होंने देवराज इंद्र के चरणों का अनन्य आश्रय लिया। उनके इस अभूतपूर्व **प्रायश्चित रूपी पुरुषार्थ** से प्रसन्न होकर अंततः देवताओं ने उन्हें स्वीकार किया और वे सशरीर स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए। [1, 2]

युधिष्ठिर का प्रश्न और भीष्म का उत्तर:

युधिष्ठिर भीष्म से पूछते हैं—"पितामह! जब जनमेजय ने इतना घोर पाप किया था, तो दैव (भाग्य) ने उन्हें आकाश में आकर साक्षात् क्यों नहीं रोका? वह तो पापी थे, फिर स्वर्ग कैसे चले गए?"

भीष्म पितामह उत्तर देते हैं—"हे युधिष्ठिर! दैव की अपनी कोई लाठी या शरीर नहीं होता जो वह किसी को रोकने आए। जनमेजय ने पाप किया, वह उनका कर्म था। लेकिन जब उन्होंने उस पाप को काटने के लिए **कठोर पुरुषार्थ (तप और प्रायश्चित)** किया, तो उनका वह पुरुषार्थ उनके पूर्व के बुरे भाग्य पर भारी पड़ गया। पुरुषार्थ के सामने दैव को झुकना पड़ा, इसलिए दैव उन्हें रोक नहीं सका।" [1, 2, 4]

---

8. ब्रह्मर्षि वैशम्पायन द्वारा अज्ञानवश ब्रह्महत्या और बाल-वध का पाप

शास्त्र संदर्भ (Scriptural Reference):

- **मुख्य सन्दर्भ: महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 6।**
- **पूरक सन्दर्भ:** *महाभारत के महर्षि प्रसंग* तथा *श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वादश स्कंध- यजुर्वेद शाखा विभाजन प्रसंग)*। [1]

विस्तृत कथा और दार्शनिक रहस्य:

महर्षि वैशम्पायन वेदव्यास जी के मुख्य शिष्यों में से एक थे और उन्होंने ही राजा जनमेजय को पूरी महाभारत की कथा सुनाई थी। एक बार वैशम्पायन जी से अनजाने में (अज्ञानवश) एक भयानक भूल हो गई। [1, 2, 3]

शास्त्रों में वर्णित एक कथा के अनुसार, महर्षि वैशम्पायन के अपनी बहन के पुत्र (भांजे) या एक बालक के साथ किसी अनुष्ठान के दौरान कुछ मतभेद या चूक हुई, जिसके कारण अज्ञानवश ऋषि के हाथों उस **बालक/ब्राह्मण की मृत्यु** हो गई। चूंकि वह बालक ब्राह्मण पुत्र था, इसलिए वैशम्पायन जी पर एक साथ दो महापाप चढ़ गए—'ब्रह्महत्या' और 'बाल-वध'। उनके शिष्य (जैसे याज्ञवल्क्य आदि) इस घटना से स्तब्ध रह गए। [1]

वैशम्पायन जी एक महान ब्रह्मर्षि थे। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना (दैव के आघात) के बाद वे अकर्मण्य होकर नहीं बैठे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि वे इस पाप के क्षालन के लिए 'चरक व्रत' (एक अत्यंत कठिन और घोर तपस्या-व्रत) का अनुष्ठान करेंगे। उन्होंने वर्षों तक निराहार और एक पैर पर खड़े होकर घोर तपस्या की। अपने इस **तपस्या रूपी प्रचंड पुरुषार्थ** से उन्होंने उस भयंकर पाप के कर्मफल को पूरी तरह भस्म कर दिया और अंततः परम पवित्र होकर अक्षय स्वर्गलोक और ब्रह्मलोक को प्राप्त किया।

भीष्म पितामह का तर्क:

भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हैं कि अज्ञानवश हुआ पाप एक 'दुर्भाग्य' या 'दैव' की तरह था, जिसने वैशम्पायन जी को घेर लिया था। परंतु ऋषि ने अपने **पुरुषार्थ (कठोर तप)** से उस दुर्भाग्य के बंधन को काट फेंका। दैव ने उन्हें स्वर्ग जाने से इसलिए नहीं रोका, क्योंकि कर्म के नियम के अनुसार, जब तपस्या द्वारा पाप का प्रायश्चित हो जाता है, तो भाग्य का मार्ग स्वतः बदल जाता है। [1]

इस पूरे संवाद का मूल निष्कर्ष (The Ultimate Message):

अध्याय 6 के अंत में भीष्म पितामह कहते हैं कि दैव (भाग्य) केवल एक अदृश्य संचय है, जिसे मनुष्य अपने पुराने कर्मों से बनाता है। [1]

"न दैवमकृतात्मनां सिद्धं भवति कस्यचित्। पुरूषार्थेन लभ्यते यदन्यैर्नैव लभ्यते॥"
(बिना पुरुषार्थ किए केवल दैव के भरोसे बैठे रहने वाले अकृतात्मा मनुष्यों को कभी सिद्धि नहीं मिलती। मनुष्य अपने पुरुषार्थ से वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है, जो केवल भाग्य के भरोसे बैठे रहने वालों को कभी नहीं मिलता।) [1]

चाहे राजा बलि हों, जनमेजय हों या वैशम्पायन—इन सभी के जीवन में **पुरुषार्थ (कर्म की शक्ति)** ही निर्णायक साबित हुई, न कि कोई अदृश्य दैव

9. राजर्षि नृग का दुबारा गोदान करने पर गिरगिट बनना

शास्त्र संदर्भ (Scriptural Reference):

- **मुख्य सन्दर्भ: महाभारत, अनुशासन पर्व (अध्याय 6, श्लोक 35-37)**।
- **विस्तृत कथा सन्दर्भ:** *श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कंध (अध्याय 64)* तथा *रामायण, उत्तरकाण्ड (अध्याय 53-54)*।

विस्तृत कथा:

इक्ष्वाकु वंश के राजा नृग अत्यंत उदार और महान दानवीर थे। वे प्रतिदिन यज्ञ करते और ब्राह्मणों को करोड़ों गायों का दान देते थे। उनके द्वारा दी गई गाएँ सर्वगुण संपन्न, दुधारू और शांत स्वभाव की होती थीं, जिनके सींगों पर सोना और खुरों पर चांदी मढ़ी होती थी।

एक बार राजा नृग ने एक परम तपस्वी ब्राह्मण को बछड़े सहित एक सुंदर गाय दान में दी। वह ब्राह्मण गाय लेकर अपने आश्रम की ओर चल पड़ा। परंतु रात्रि के समय वह गाय किसी तरह उस ब्राह्मण के बंधन से छूट गई और भटकते हुए वापस राजा नृग की ही लाखों गायों से भरी गौशाला में आकर खड़ी हो गई। सेवकों को इसकी जानकारी नहीं थी। अगले दिन एक दूसरे दरिद्र ब्राह्मण दान मांगने आए, तो राजा ने अनजाने में वही गाय दोबारा इस दूसरे ब्राह्मण को दान कर दी।

जब दूसरा ब्राह्मण गाय लेकर जा रहा था, तब मार्ग में पहले ब्राह्मण ने उसे देख लिया। दोनों ब्राह्मणों में गाय के स्वामित्व को लेकर भारी विवाद छिड़ गया और वे न्याय के लिए राजा नृग के दरबार में पहुँचे। राजा नृग यह देखकर स्तब्ध रह गए कि उनसे अनजाने में 'दत्त-अपहार' (दिए हुए दान को वापस लेने या दोबारा बेचने) का महापाप हो गया है। राजा ने हाथ जोड़कर दोनों ब्राह्मणों को शांत करने का प्रयास किया और पहले ब्राह्मण से कहा—"हे मुनि! आप इसके बदले मुझसे एक लाख उत्तम गाएँ ले लीजिए, पर यह गाय छोड़ दीजिए।" ब्राह्मण ने कहा—"राजन्! मैं केवल अपनी ही गाय लूंगा।" फिर राजा ने दूसरे ब्राह्मण से प्रार्थना की, पर वे भी टस से मस नहीं हुए। दोनों ब्राह्मण क्रोधित होकर चले गए और जाते-जाते राजा को शाप दे दिया कि तुमने दी हुई वस्तु का दोबारा सौदा किया है, इसलिए तुम्हें **गिरगिट (कृकलास)** बनना पड़ेगा।

उद्धार: राजा नृग एक विशाल गिरगिट बनकर द्वारका के पास एक अंधे कुएं में गिर गए। पूर्व पुण्यों के कारण उन्हें अपनी स्मृति बनी रही। द्वापर युग में जब **भगवान श्रीकृष्ण** के पुत्रों ने कुएं में उस जीव को देखा और निकाल नहीं पाए, तब श्रीकृष्ण ने स्वयं वहाँ पहुँचकर अपने बाएं हाथ से उस गिरगिट का स्पर्श किया। भगवान के छूते ही राजा नृग दिव्य रूप में प्रकट हुए और परमधाम को गए।

भीष्म पितामह का तर्क:

भीष्म समझाते हैं कि राजा नृग इतने बड़े दानी थे, फिर भी उनका पूर्व भाग्य (दैव) उन्हें गिरगिट बनने से नहीं बचा सका। क्योंकि कर्म का नियम अटल है। अनजाने में किया गया एक गलत कर्म (पुरुषार्थ) भी अपना फल देकर रहता है, दैव उसमें कोई रियायत नहीं देता।

---

10. राजर्षि धुन्धुमार का वरदान त्यागकर गिरिव्रज में सो जाना

शास्त्र संदर्भ (Scriptural Reference):

- **मुख्य सन्दर्भ: महाभारत, अनुशासन पर्व (अध्याय 6, श्लोक 38-39)।**
- **पूरक सन्दर्भ:** *महाभारत, वनपर्व (अध्याय 201-204 - धुन्धु-वध प्रसंग)*।

विस्तृत कथा:

इक्ष्वाकु वंश के राजा कुवलाश्व को **'धुन्धुमार'** कहा जाता है। उन्होंने लोक-कल्याण के लिए मरुभूमि में छिपे 'धुन्धु' नाम के एक भयानक और अजेय राक्षस का वध किया था, जिसके कारण पूरी पृथ्वी कांपती थी। इस महान पुरुषार्थ से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी और अन्य देवताओं ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए थे और अनेक दिव्य ऐश्वर्य, अक्षय धन तथा अजेय होने के **दुर्लभ वरदान** दिए थे।

धुन्धुमार ने अपने जीवनकाल में सैकड़ों महान यज्ञ किए और देवताओं को तृप्त किया। वे यज्ञ करते-करते अत्यंत वृद्ध हो गए। देवताओं द्वारा दिए गए वरदानों के कारण वे चाहते तो स्वर्ग के राजा इंद्र की भांति अनंत काल तक दिव्य भोग और विलास का आनंद ले सकते थे, क्योंकि उनका 'दैव' (भाग्य) देवताओं के वरदानों से बंधा हुआ था।

परंतु, जीवन के अंतिम पड़ाव में राजा धुन्धुमार को संसार से गहरा वैराग्य हो गया। उन्होंने सोचा कि इन भौतिक सुखों और वरदानों का भोग करने से आत्मा का परम कल्याण नहीं होगा। उन्होंने देवताओं के सहर्ष दिए हुए उन सभी दिव्य वरदानों, यज्ञों के फलों और राजपाठ को तिनके के समान त्याग दिया। वे सब कुछ छोड़कर **गिरिव्रज (पहाड़ों के बीच एक अत्यंत शांत और गुप्त स्थान)** में चले गए। वहाँ उन्होंने समाधि लगाई और योग-निद्रा में लीन होकर सो गए (यानी मोक्ष मार्ग को चुना)।

भीष्म पितामह का तर्क:

भीष्म यहाँ युधिष्ठिर को कर्म की सर्वोच्चता समझाते हैं कि धुन्धुमार को देवताओं का वरदान (भाग्य/दैव) मिला हुआ था कि वे राजसुख भोगें, परंतु उनके खुद के **विवेक और वैराग्य रूपी पुरुषार्थ** ने उस दैव को पीछे छोड़ दिया। मनुष्य का स्वयं का निर्णय और वर्तमान कर्म देवताओं के लिखे भाग्य से भी बड़ा है।

---

11. पाण्डवों द्वारा धृतराष्ट्र-पुत्रों से बाहुबल द्वारा राज्य वापस लेना

शास्त्र संदर्भ (Scriptural Reference):

- **मुख्य सन्दर्भ: महाभारत, अनुशासन पर्व (अध्याय 6, श्लोक 40-42)**।
- **समग्र सन्दर्भ:** *महाभारत का उद्योगपर्व, भीष्मपर्व और सौप्तिक पर्व*।

विस्तृत कथा:

कौरवों (धृतराष्ट्र के पुत्रों) ने शकुनि के कपट-जाल और द्यूत-क्रीड़ा (जुए) के माध्यम से पाण्डवों का इंद्रप्रस्थ जैसा वैभवशाली राज्य, धन और सर्वस्व छलपूर्वक हड़प लिया था। पाण्डवों को 12 वर्ष का वनवास और 1 वर्ष का अज्ञातवास भुगतना पड़ा।

जब पाण्डव अपना अज्ञातवास पूरा करके लौटे, तो धर्मराज युधिष्ठिर ने शांति का मार्ग चुना। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को शांतिदूत बनाकर भेजा और दुर्योधन से कहा कि यदि वह पूरा राज्य नहीं दे सकता, तो केवल पांच गांव ही दे दे, ताकि पाण्डव अपना जीवन निर्वाह कर सकें। परंतु दुर्योधन ने अहंकारवश कहा—*"सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव"* (बिना युद्ध के सुई की नोक बराबर भूमि भी नहीं दूंगा)।

शांति के सारे प्रयास विफल होने पर पाण्डवों ने भाग्य (दैव) के भरोसे हाथ पर हाथ धरकर बैठना छोड़ दिया। अर्जुन, भीम, सात्यकि और अन्य वीरों ने भगवान श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन में गांडीव और अस्त्र-शस्त्र उठाए। कुरुक्षेत्र के मैदान में 18 दिनों तक चले इतिहास के सबसे भीषण युद्ध में पाण्डवों ने अपने **प्रचंड बाहुबल, पराक्रम, नीति और शौर्य (पुरुषार्थ)** के दम पर कौरवों की 11 अक्षौहिणी सेना को समूल नष्ट कर दिया। दुर्योधन सहित धृतराष्ट्र के सभी पुत्र मारे गए और पाण्डवों ने अपना खोया हुआ राज्य और अखंड साम्राज्य पुनः वापस जीता।

भीष्म पितामह का तर्क:

भीष्म इस अंतिम प्रसंग से सीधे युधिष्ठिर के मन के संशय पर चोट करते हैं। वे कहते हैं—"हे धर्मराज! यदि सब कुछ 'दैव' (भाग्य) ही तय करता, तो दुर्योधन के पापों के कारण राज्य तुम्हें स्वतः ही मिल जाता। तुम्हें वन में कष्ट नहीं भोगना पड़ता। लेकिन सत्य यह है कि तुम्हें अपना राज्य वापस पाने के लिए युद्ध लड़ना पड़ा, अपनों को खोना पड़ा और **अपने बाहुबल (पुरुषार्थ) का प्रदर्शन** करना पड़ा। बिना पुरुषार्थ के भाग्य तुम्हें कभी राज्य वापस नहीं दिला सकता था।"

अध्याय 6 का अंतिम निष्कर्ष (The Final Verdict):

इन सभी कथाओं को पूर्ण करने के बाद, पितामह भीष्म इस दार्शनिक संवाद को इस अमर उपदेश के साथ समाप्त करते हैं:

"पुरुषः कर्मणा सर्वं दैवमप्यतिवर्तते।"
(मनुष्य अपने पुरुषार्थ और श्रेष्ठ कर्मों के बल पर स्वयं दैव (लिखे हुए भाग्य) को भी पीछे छोड़ देता है।)

भाग्य केवल एक संचित ऊर्जा है, लेकिन वर्तमान का 'पुरुषार्थ' वह कुल्हाड़ी है जो भाग्य की रेखाओं को बदल सकती है। इसलिए ज्ञानी मनुष्य भाग्य के भरोसे न बैठकर सदा कर्मशील रहता है।